

कामिल मुरशिद

मैं क्यों अल-मसीह का
पैरोकार हो गया

सफ़दर अली

कामिल मुरशिद

मैं क्यों अल-मसीह का
पैरोकार हो गया

सफ़दर अली

*kāmil murshid. main kyon al-masih
kā pairokār ho gayā.*

The Perfect Spiritual Master. Why I Became a
Follower of al-Masih

by Safdar Ali
(Urdu—Hindi script)

© 2018 Chashma Media
published and printed by
Good Word, New Delhi

Bible quotations are from UGV.

for enquiries or to request more copies:
askandanswer786@gmail.com

बचपन में मुझे वालिद साहब से अच्छी-खासी दीनी तालीम मिली। न सिर्फ़ यह बल्कि मैं ने अपने मज़ीद कितने ही दूसरे दीनदार घरानों से तरबियत और सोहबत पाई। क्या अजब कि मैंने बचपन ही से दुनिया दिल पर सर्द कर दी। साथ साथ आखिरत की फ़िकर जी में गड़ गई, जिसे खुदावंद खुदा ने दिन दिन अपनी अजीब हिकमत और कुदरत से बढ़ाया।

अगरा में तालीम का हुसूल

मैं बीस-एक साल तालिब-इल्म रहा। शुरू में तो बुजुर्गों ने मुझे पढ़ने का शौक़ दिलाया, लेकिन चार-पाँच साल के बाद खुद मेरे अंदर यह शौक़ पैदा हुआ। यह शौक़ इतना शदीद था कि शौक़ दिलानेवाले रातों को सोते से उठ उठकर किताबें छुपाते और चराग़ बुझाते थे। हमजमातों ने किताब का कीड़ा नाम रखा था। चौदह-एक साल

मैंने खास आगरा में गरीबुल-वतनी की हालत में तालिब-इल्मी में गुजराने जहाँ मैंने वालिद साहब के सिवा दो-तीन ऊपर पचास उस्तादों से इल्म और हुनर की तालीम पाई। जिसका इल्म, हुनर या किताब मशहूर थी उसको उसी बाब का उस्ताद बनाया।

आखिरी सात-आठ साल मैं सरकारी कॉलज में दाखिल होकर फ़ारसी, अरबी, हिंदी और संस्कृत की मामूली तकमील और तहसील करता रहा। मैंने अँग्रेज़ी भी शुरू की थी बल्कि इतनी जल्द तरक्की करने लगा कि शहर में इस का चर्चा हुआ। जवाब में मुफ़्ती साहब ने हु्रमत का फ़तवा दिया। दीन प्यारा था, इसलिए पढ़ना छोड़ दिया।

उस वक़्त के तरीक़ाए-तालीम के मुताबिक़ इधर उलूमे-यूनानी की तालीम थी, इधर हिंदू रियाज़ी और फ़िलासफ़ी की तलक्कीन। और इनके साथ ही मगरिबी सायंस भी सिखाए जाते थे। इबादात और बाज़ दीनियात बल्कि दूसरे खास खास उलूम और किताबें जो कॉलज में नहीं पढ़ाए जाते थे उन्हें मैं अपने तौर से शहर में हासिल करता था।

इनाम

कॉलज में मैं ने कई-एक इनाम पाए। आला दर्जे की बल्कि अक्वल नंबर की मुतवातिर स्कॉलरशिप भी पूरी पूरी मियाद तक पाई। और आखिर को एक तमगा भी लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर बहादुर के हाथ से पाया। इस से पहले किसी भी अरबी, फ़ारसी, हिंदी या संस्कृत के तालिब-इल्म को उन से तमगा न मिला था। सब आखिरी उस्तादों और कॉलज के अफ़सरों ने उम्दा उम्दा सर्टीफ़िकेट दिए। जब कॉलज में फ़ारसी पढ़ाने की जगह ख़ाली हुई तो मैंने अपने कॉलज और दहली और बनारस वग़ैरा के तालिब-इल्मों और उस्तादों के साथ बड़े भारी मारके का इम्तहान दिया। नंबर अक्वल हासिल करके मैं उस ख़िदमत पर मामूर हुआ।

असिस्टंत प्रोफ़ेसर का ओहदा

कुछ अरसे बाद मैं गवर्नमेंट नॉर्मल स्कूल का नैचरल फ़िलासफ़ी का असिस्टंत प्रोफ़ेसर भी मुकर्रर हुआ। साथ साथ मैं एक नामी प्रेस में अखबार का तरजुमा और दूसरे कारोबार करता रहा। लेकिन मैंने दीनियात का हुसूल उस वक़्त भी जारी रखा।

रूह की प्यास

ग़रज़ सालहासाल दौड़-धूप तो बहुत हुई। गली गली कूचे कूचे की खाक छानी। घर घर दरवाज़ा दरवाज़ा जा जाकर झाँका। यगानों-बेगानों, हममज़हब और ग़ैरमज़हब, हमक्रौम और ग़ैरक्रौम के लोगों के बड़े बड़े एहसान उठाए जिनका शुक्रिया अदा नहीं हो सकता। बहुत कुछ पढ़ा-पढ़ाया, सुना-सुनाया और देखा-भाला। लेकिन बड़े ग़म की बात थी कि एक बात जिसकी मेरी रूह प्यासी थी बल्कि दिन दिन ज़्यादा प्यासी होती गई, वही न पाई। वह क्या थी? दिली तसल्ली और रूहानी आराम। तो भी जहाँ तक उस वक़्त तक मेरी मालूमात थी मैं इस बात से खुश भी था कि दूसरे दीनों और फ़िरकों की निसबत अपना आबाई दीन और फ़िरका ही अच्छा है।

पंजाब में डिप्टी इंस्पेक्टर का ओहदा

1856 में मैं तरक़्की मिलकर डिप्टी इंस्पेक्टर मदारिस मुकर्रर होकर रावलपिंडी पहुँचा। फिर ज़िला झेलम भी पाया, फिर क्रिस्मत पेशावर भी सुपुर्द हुई। लंबे-चौड़े दौरे करने पड़े।

अहले-तसव्वुफ़ की सोहबत

उस वक़्त चंद सूफ़ी दरवेशों से मुलाक़ात हुई। उनकी सोहबत और सूफ़िया तालीम पाकर दीन की नई ज़मीन और नया आसमान नज़र आया। बड़ा भारी रूहानी इनक़लाब सामने आया। बड़ी मुश्किलात भी पेश आईं। बड़ी बड़ी मेहनतें और रियाज़तें उठानी पड़ीं। ख़ुदा के फ़ज़ल से मैं ने वह दूर-दराज़ मनज़िलें जल्द तय करा दीं। लेकिन होते होते मुझे आख़िर में मानना पड़ा कि मैं वहीं खड़ा हूँ जहाँ से शुरू में चला था।

मुरशिद की तलाश

उस वक़्त का ग़म बरदाश्त से बाहर था। तब सब दरवेश इस नतीजे पर पहुँचे कि मनज़िल-मक़सूद तक पहुंचने के लिए कामिल मुरशिद यानी हिदायत करने वाले की ज़रूरत है। उस वक़्त हम अजब अजब तौर बड़े ग़म और अलम के साथ एक दूसरे से मुरशिद की तलाश में जुदा हुए।

मुल्तान में तबदीली

मेरी तबदीली मुल्तान को हुई। मुल्तान, झंग, गोगेरा और मुज़फ़्फ़रगढ़ की आबादी और जंगलों में मैं ने दरवेश ही दरवेश पाए। गोया कि मशायखे-सूफ़िया का जंगल था। यह देखकर मैं दिल में निहायत ख़ुश हुआ कि यहाँ तो मेरी मुराद ज़रूर पूरी हो जाएगी। जहाँ जहाँ मैं ने दरवेश का नाम सुना वहाँ दौड़ा गया। मैं उन हलकों, मजलिसों और ख़ानकाहों का पता लगा लगाकर हाज़िर हुआ और अपना हाल रो रोकर सुनाया,

من بہر جمیعے نالال شدم
 صحبتِ خوش حال و بدحال شدم
 ہر کسے از ظنِ خود شد یارِ من
 از درونِ من بہ جستِ اسرارِ من
 سرِ من از نالۂ من دُور نیست
 لیک چشم و گوش را آن نور نیست

मैं हर जमात में मातम करता रहा,
 ख़ुशहालों और बदहालों की सोहबत में रहा।
 हर कोई अपनी राय के बाइस मेरा दोस्त रहा।
 दिल से राज़ों की तलाश करते करते

मेरा सर मातम करने से दूर नहीं है,
लेकिन मेरी आँख और कान को वह नूर हासिल
नहीं।

सूफ़ियों का मायूसकुन जवाब

उस वक़्त यही मेरा हाल था। लेकिन सारी तगो-दौ का नतीजा सिफ़र था, हर कहीं से यह जवाब मिला, “जिस पानी का तू प्यासा है हमारे पास नहीं!!!” लेकिन साथ ही हर किसी से यह बड़ी खुशख़बरी भी पाता था : “पर घबरा नहीं। कभी न कभी, कहीं न कहीं पानी ज़रूर पाएगा।”

जबलपुर में वापसी

1860 में पूरी उम्मीद थी कि बड़ी भारी तरक्की होगी। लेकिन इसके उलट हुआ। घटाव का दरवाज़ा खुल गया, और मैं सब हमओहदों के साथ घटाव में आया। मैं कमतर दर्जे की मलाज़मत मंज़ूर न करके वतन वापस आया। वहाँ मैं तालीम के हाकिमों की मेहरबानी और क़दरदानी से ज़िले जबलपुर का डिप्टी इंस्पेक्टर मदारिस मुक़र्रर होकर आया।

मुरशिद की तलाश में अरब का प्रोग्राम

वहाँ कहीं मुतलाशी या दरवेश नज़र न आए। मैं बहुत ही घबराया। तब मैं ने फ़ैसला किया कि अरबिस्तान और खासकर हरमैन में मुरशिद की तलाश करूँगा। मैंने रुखसत लेकर रिश्तेदारों से मिलने और विदा होने को वतन गया। लेकिन वहाँ क़र्ज़ के किसी मामले में उलझकर मुझे सफ़र को दो-डेढ़ साल तक मुलतवी करना पड़ा।

किताबे-मुक़द्दस को रद करने का इरादा

एक दिन मैंने अचानक किताबे-मुक़द्दस का एक हिस्सा देखा। मुझे ख्याल आया कि मुझे उसे रद करन चाहिए। चुनाँचे मैंने उसे अपने पास रख लिया। कुछ दिनों बाद अजब इत्तफ़ाक़ से नहमियाह गोरे (नीलकंठ शास्त्री) से मिला। पाँच-सात दिन तक उनके साथ दीनी बातचीत जारी रही। इससे मेरे दिल में किताबे-मुक़द्दस और दीने-मसीही के बारे मज़ीद जानने का शौक़ बढ़ा। तीन-एक साल मैं ने रात-दिन यह करने में बसर किए।

आलिमों से नफ़रत का इज़हार

मुतालआ करते करते मुझे मालूम हुआ कि दीने-आबाई सच नहीं नज़र आता। तब मैं बहुत रंजिदा हुआ और आहो-नाला करके जंगल और पहाड़ में आँहज़रत को पुकारा। मैं ने कई-एक नामी-गिरामी आलिमों को भी अपना बुरा हाल लिखकर इलाज का जवाब माँगा। अफ़सोस, कोई जवाब न मिला। बस इतना सुना कि किसी ने मेरे खत को जला दिया, किसी ने उसे फाड़ डाला, यह कहकर कि बेदीन का क्या इलाज और जवाब?

शास्त्री साहब की मुहब्बत

चूँकि उन दिनों मुझे ईसाई मज़हब पर भी बहुत शुबहे थे इसलिए मैं ने आख़िर में अपना बुरा हाल बयान करके शास्त्री साहब को भी खत लिख भेजा। फ़ौरन जवाब मिला, “मैं तुम्हारा दुख पहचानता हूँ और इसलिए अब यहाँ नहीं ठहर सकता। लेकिन मैं एक स्कूल का हैड-मास्टर हूँ। इसलिए अपने और स्कूल के मालिकों को ख़बर देता हूँ। जैसे ही उनसे इजाज़त मिली आता हूँ। इसका मतलब यह नहीं कि जवाब दे सकूँगा। लेकिन हमदर्द हूँगा इस इरादे से।” दूसरे दिन दूसरा जवाब मिला कि “मालिकों ने तुम्हारा खत सुना और मुझे फ़ौरन इजाज़त दी। अब मैं रवाना होता हूँ।”

फिर वह तशरीफ़ लाए और मेरे और मेरे साथ के जो लोग दीने-हक़ के तालिब थे के रूहानी बाप बन गए। वह छः-एक महीने दीनी तालीम करते और अपनी दुआओं में हमें शरीक फ़रमाते रहे। बल्कि वह मेरे साथ दौरे में भी मेहरबानी से फिरते रहे। इसके बावजूद उन्होंने या स्कूल के मालिकों ने एक कौड़ी का बोझ भी हममें से किसी पर नहीं रखा।¹

इस तरह खुदावंद खुदा ने दो अफ़राद के ज़रीए जिन्होंने अपने आपको महरूम रखा हमारे दिलों के शक-शुबहे दूर करके अपने फ़ज़ल का दरवाज़ा खोल दिया।

अपनी क़ौम का रदे-अमल

यह देखकर हमारे क़ौम के लोगों ने हमें नाहक़ पर समझकर दूध से मक्खी की मानिंद दूर फेंक दिया। उन्होंने सब मुहब्बत और क़राबत के वास्ते तोड़ डाले। लेकिन ताज्जुब की बात यह है कि उनके दीनदारों ने हमें कम तंग किया जबकि जो दीनदार नहीं थे उन्होंने हमें बहुत ही सताया। किसी ने हमारे अहलो-अयाल को बहकाया

¹“हम” से दो दोस्तों की तरफ़ इशारा है जिन्होंने बाद में सफ़दर अली के साथ बपतिस्मा लिया। एक का नाम क़ासिम ख़ान था जो साहोरा के गवर्नमेंट स्कूल में उस्ताद थे। दूसरे एक लायक़ मौलवी बनाम करीम बख़्श थे। वह भी साहोरा में उस्ताद थे।

और भगाया। किसी ने नोट, किसी ने किताबें, किसी ने बहुत-से क्रीमती कागज़ों को चुराया। बाज़ों ने अच्छी तरह से भारी चलते-चलाते प्रेस को तुड़वाया। कोई रुपए और किताबें लेकर भाग गया। किसी ने प्रेस की कई हज़ार किताबों पर हमला करके कौड़ियों के मोल बिकवाया। किसी ने मालो-असबाब दबाया। किसी ने मकान ही दबवाया। और इसी तरह जिसके जो जी में आया कर गुज़रा। अब तक वह मेरा पीछा नहीं छोड़ते।

सबसे खतरनाक दुश्मन

मगर मैंने अपने ही नादान और नापाक दिल को सबसे खराब पाया है। वही मेरा जानी और रूहानी दुश्मन है। यह जानकर हम अपने मुबारक मुरशिद और रहबर के फ़ज़ल के शुक्रगुज़ार हैं जिसने इस वक़्त तक हमें तलवार की धार पर चलाया है। उसी पर भरोसा है कि वह आख़िर तक हमारी हिमायत और हिफ़ाज़त करके इस दुनिया से उठाएगा और अपने पास बुलाएगा जहाँ हम अबदुल-आबाद खुशहाल रहेंगे।